International Journal of Arts, Humanities and Social Studies

ISSN Print: 2664-8652
ISSN Online: 2664-8660
Impact Factor: RJIF 8
IJAHSS 2023; 5(2): 56-59
www.socialstudiesjournal.com
Received: 18-09-2023
Accepted: 25-10-2023

डॉ. ममता सक्सेना
असिस्टेंट प्रोफेसर, संत हरिदास कॉलेज आफ हायर एजुकेशन, नजफगढ़, नई दिल्ली-४३, भारत

Corresponding Author:
डॉ. ममता सक्सेना
असिस्टेंट प्रोफेसर, संत हरिदास कॉलेज आफ हायर एजुकेशन, नजफगढ़, नई दिल्ली-४३, भारत

भारतीय चित्रकला का इतिहास

डॉ. ममता सक्सेना

DOI: https://doi.org/10.33545/26648652.2023.v5.i2a.79

सारांश
भारतीय चित्रकला उसने नि:असीम सागर की भांति है जिसके ओर छोर तथा गहराई का सहज अनुमान नहीं हो पाता है,मानव ने प्रारंभ से ही व्यावहारिक सजगता के साथ चित्रों के उदाहरण छोडे हैं और मध्य प्रदेश की आदिम कंदराओं में हमें उसे बर्बर पर सुसंस्कृत और सुअलंकृत होने की लालसा के अनुगामी मानव के अनेक रेखीय चिन्ह तथा अस्त्र शस्त्रों के सौंदर्य प्रधान रूप में हमें आज आश्चर्यचकित करते हैं, तभी से मानव का कलात्मक विकास एवं संस्कृति अनुराग फीका नहीं पड़ा बल्कि समय व चेतना के साथ वह अनेक महान रूपों का निर्माण कर सका, जिनके दर्शन मात्र से ही आधुनिक मानव संत्रास और भय के वातावरण से मुक्ति प्राप्त करता है।

कूटशब्द: नि: असीम: जिसका आदि न अंत, कंदराओं: गुफा बर्बर: असभ्य / जंगली, भावोन्मेष: भाव का उदय, सहस्त्रधारा: हजारों मोड़ वाली

प्रस्तावना
किसी भी देश की संस्कृति उसकी अपनी आत्मा होती है जो उसकी संपूर्ण मानसिक निधि को सूचित करती है यह किसी एक व्यक्ति के सुकृत्यों का परिणाम मात्र नहीं होती अपितु अनगिनत ज्ञात और अज्ञात व्यक्तियों के निरंतर चिंतन एवं दर्शन का परिणाम होती है।भारतीय संस्कृति पुरातन धर्म परकता आध्यात्मिकता दर्शनिकता देवप्रयता एकीकरण और समन्वय सर्वजन सुखाय की मौलिक सूत्रों में पिरोई हुई एक मुक्ता हार के समान है।
भारतीय कला भी संस्कृति के इन्हीं आदर्श का साकार रूप है प्रागैतिहासिक कला,अजंता कला, अपभ्रंश कला, मुगल कला राजपूत कला एवं स्वतंत्रता आंदोलन के समय की कलाओं में विभिन्न रूप एवं शैलियों का दिग्दर्शन होता है।भारतीय समाज में नारी का स्थान सत्यम शिवम सुंदरम से पूर्ण है अतः वह जीवन संगिनी है और पुरुष के पूरक गुणों की सन्निधान होने से मानव की चिर सहधर्मिणी रही है (पंत - नारी नर की छाया) नारी समस्त परिवेश की पूरक है यही कारण है कि पुरुष के लिए प्रत्येक क्षेत्र में नारी सुख का मूल कही गई है (सुखस्य स्त्रियांम रूपम नाना रूपम धराश्च ता:- नाट्यशास्त्र)

संस्कृति एवं चित्रकला
वेदों के युग से आज तक राजनीतिक कार्यक्रम और सामाजिक उत्तरदायित्व की खाड़ी विवेचना के मध्य भारतीय नारी का जो अस्तित्व रहा है वह दृष्ट है प्रत्यक्ष है।

इसके दूसरे पहलू पर कलात्मक सृजन की मनोभूत संवेदनीय भावोनमेष की अपेक्षित भूमि में महिलाओं का जो सहयोग रहा है वह स्पृहर्णीय है, संवेदनशील कोमल नारीमन अभिव्यक्ति की विधा में अधिक गहरी दृष्टि और प्रेरणा दे सका है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक कला के क्षेत्र में एक बड़ा परिवर्तन हुआ और 20वीं सदी तक आते-आते जीवन दर्शन एक द्वन्दात्मक भौतिकवाद से ग्रस्त हो उठा । अतीत का वैभव, आनंद पूर्ण क्रीडा, विलास, मधुर रागात्मकता के प्रभाव से झूमता जीवन एक झूठे सपने की भांति तिरोहित हो गया और एक ऐसी व्यापक ऊर्जा ने हम सबको आच्छादित कर लिया, जहां सुंदर-असुंदर, अच्छा -बुरा सभी कुछ ग्राह हो उठा।सुसज्जित मसनद का सहारा लेकर बैठी नायिका का रूप पथ की दीन भिखारिन ने ले लिया । उमर खैयाम की रुबाइयां जैसी पारदर्शी कांच की कल्पना के स्थान पर बोझिल पगो से बढ़ती पणिहारिन खेत खलिहान और सूनी पगडंडी आ गए। (शचि रानी गुर्टू - कला के प्रणेता पृ-१३८-१३९)

भारतीय संस्कृति में नारी के महत्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अतीत के पृष्ठों का पूर्वलोकन करना आवश्यक होगा, अतीत के प्रश्नों को पलट कर प्रागैतिहासिक काल से मानव द्वारा चित्रित नारी आकृतियों का गहन अध्ययन कर नारी के महत्व को समझने की चेष्टा कौतुहल का परिणाम है।प्रागैतिहासिक काल के अधिक प्राचीन चित्रों में पुत्र दागर गृहादि ′वाली आसक्ति की कल्पना तक मन में नहीं उठती, वंश की चेतना और वंश की वृद्धि की चिंता यह दोनों ही उसके जीवन रक्षा मूलक चिंता की छाया तक नहीं छू पाती । मातृत्व और परिवार की विविध स्थितियों से संबद्ध जो भी चित्र मिलते हैं वे इसलिए उत्तर पाषाण काल और नव पाषाण काल के ही प्रतीत होते हैं।

सर्वत्र ही इस सभ्यता की सामाजिक व्यवस्था मातृ सत्तात्मक थी जिसकी सृजन कारी शक्तियों के प्रति लोगों की घनी आस्था ने प्रायः धार्मिक विश्वास का रूप ले लिया वहां सर्वत्र मातृरूपिणी देवी की पूजा होने लगी थी।आदिमानव की सामाजिक व्यवस्था मानव समाज की प्राथमिक अवस्था है जो मातृ सत्तात्मक है, जिसमें माता की शक्ति प्रधान है। मानव जब विचारशील हो चला तब उसने माता की महिमा जानी और उसे बड़ा विस्मय हुआ कि उसकी मां अनायास पुत्र-पुत्रियों को सिरज देती है और यह चमत्कार प्रकटत: केवल अपनी देह से करती है ।माता का एक से दो हो जाना अनुभव का विषय था जो उसने देखा और उसने माना, इसी से माता के प्रति उसकी श्रद्धा असीम हो गई ।सारी प्राचीन सभ्यताओं में माता की मिट्टी की मूर्ति बनाकर लोग उसकी पूजा करने लगे।

भारतीय ऋग्वेदिक आर्यो में भी अदिति की, उसे देवताओं की माता मानकर पूजा की हुई जो पाश्चातय काल में शक्ति काली के रूप में अर्चित हुई, माता की मूर्ति मृत्तिका से बनाकर पूजने का प्रचलन सार्वभौम हो गया। नारी की कमनीय प्रतिमा के बिना कला ही नहीं विश्व भी अपूर्ण है,नारी का लावण्य कला का ललाम भाव है, वह रस बनकर कला में ओतप्रोत है।

कला का उद्देश्य

नारी चित्रण अजंता की चरम उपलब्धि है ।अजंता के कलाकारों ने अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए नारी को अग्गणितत स्थितियों में चित्रित किया है । ये कलाकार अपनी नारी को असुंदर नहीं बना पाए, यही उनकी कमजोरी है, वह उनके अलंकरण की सर्वोत्तम पूंजी है उसका उन्होंने कोई ऐसा दुरुपयोग नहीं किया । सौंदर्य से परे नारी का चित्रण करना उन्हें पसंद नहीं था, इसी कारण उन्होंने नारी की नग्न, अर्धन्न अथवा आवृत्त विभिन्न परिस्थितियों का समावेश किया है। उन्होंने खुले रूप में उसे देखा और खुले रूप में उसे चित्रित किया ।कहीं-कहीं किसी झीने वस्त्र से शरीर ढका भी है, वहां शरीर की कांति वस्त्र के अंदर से झांककर कलाकार की सशक्त अभिव्यक्ति और बारीक अध्ययन का उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

जिस प्रकार षोडश कलाओं से पूर्ण चंद्रमा की शोभा होती है,इस प्रकार षोडशोपचार से चंद्रमुखी बालाए भी शोभा पाती थी। प्रसाधन के यह षोडशोपचार इस प्रकार हैं, उपटन, लेपन, स्नान, केशसज्जा, इत्र फुलेल का मर्दन, मांग में सिंदूर, माथे पर तिलक और बिंदी, चंदन की खौर, आंखों में अंजन, कपोलों पर श्याम बिंदुका, मुख में पान, दांतों में मिस्सी, ओष्ठों को लाल रंग से रंगना, ठोड़ी पर तिल बनाना, हाथों में मेहंदी रचाना, पांवों में महावर लगाना ।इन्हीं को षोडश श्रृंगार कहा गया है । कविवर बिहारी ने इनमें से कुछ का उल्लेख एक दोहा में इस प्रकार किया है -

बेंदी भाल, तंबोलमुख सीस सिलसिलेवार ।
द्वग आंजै राजैखरी एई सहज सिंगार।।

गुप्त काल में सौंदर्य एवं कला जीवन में इतनी समाविष्ट हो चुकी थी कि वह अपने युग की सर्वांग पूर्ण कृतियों में तन्मयता में डूब कर साकार हुई तत्कालीन कला में भावना का उद्दात आरोहण पग पग पर परिलक्षित होता है। समस्त आनंद और उल्लास साधना और

तालीनता, स्फूर्ति और अंत: शक्ति उभर कर भारतीय कला के स्वर्णिम विहान की प्रभा को अजंता के अंत : पटल में रुपायित कर रही है, यद्यपि दो सहस्त्र वर्षों के थपेड़ों की मार उसने सही पर आज भी कला साधकों के प्राणों की धड़कन वहां की रंगीन रेखाओं और निर्भर संकेतों में लहर लहर सी उठती है ।समय की निर्वधि असीमता भी धूमिल प्रकाश में सिहरते उन अगणित रंगों की सुषमा कोष न मिटा सके जो कला की गति में एकाकार सा लगता है। जैसे चरम निर्माण वहां के कण-कण में मूर्तिमान हो उठा हो ।निराकार और साकार रूप अनगढ शिलाखंडो में समा जाने को मचल रहा हो, भीतरी प्रेरणा की मनुहारे छेनी और हथौड़ों की चोटों में गूंजकर बिखर गई हो और जैसे कला की पयश्विनी छाया पथ में उतराती उमड़ती शाश्वत प्रकाश पुंज बनकर अक्षुण्ण और अमर बन गई।

शब्दों या चित्रों में इन बौद्ध शैल गृहों की अत्यधिक प्रभावशीलता व्यक्त करना असंभव है यह प्रभावशीलता उनके विस्तृत होने से उद्भुत नहीं होती क्योंकि स्थान तो बहुत सीमित और नियमित है, अपितु इस कठोर वास्तुकला के सौंदर्य तथा इसमें आने वाली झीनी-झीनी- किरणों में छा जाने वाली रहस्यात्मक से उत्पन्न होती है जिसमें वहां की प्रत्येक वस्तु धीरे-धीरे तिरोहित हो जाती है और दर्शक अपने आप को अवास्तविक ऐन्द्जालिक जगत में पाते हैं । अजंता के चित्रों में सौंदर्य इतनी मात्रा में प्रभावित है कि उसे थोड़े में व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

राजस्थानी पहाड़ी तथा मुगल शैलियों का अंत होने पर भारत में चित्रकला का पूर्ण अध: पतन सा हो गया था कुछ बड़े नगरों में ऐसे चित्रकार रह गए थे जो पुराने चित्रों की नकल करके अपना जीवन निर्वाह करते थे इन चित्रों में कला तो नाम मात्र को भी नहीं है कहीं-कहीं प्रसिद्ध व्यक्तियों की मुख्य कृतियां भी रूढ हो गई हैं ।

भारतीय कला उस निस्सीम सागर की भांति है जिसके ओर और छोर तथा गहराई का सहज अनुमान नहीं हो पाता, अजंता शैली, एलोरा शैली, सित्तनवासल शैली, बुद्ध शैली, जैन शैली, पूर्व राजस्थानी शैली, मुगल शैली, राजपूत शैली, पहाड़ी शैली, कंपनी शैली, पुनर्जागरण शैली आदि चित्र शैलियों ने भारत में पहले अनेकों स्थानों पर विभिन्न युगों में एक ऐसी समन्वित चित्रकला की स्वरूप का निर्माण किया है जो भारतीय संस्कृति पूर्ण अनुरूप है।

भारतीय चित्रकला की विशेषताएं

भारतीय चित्रकला की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो इसे अन्य देशों की कला से पूर्णता पृथक कर देती है जैसे कल्पना प्रियता, अतः प्रकृति का अंकन, धार्मिकता मानव तथा मानवीय प्रकृति का समन्वय, आदर्शवादिता प्रतीकात्मकता, मुद्राएं, रेखा, छाया प्रकाश रहित रंग विधान, काल्पनिक परिपेक्ष, अलंकारिता, सामान्य पत्र विधान, नाम हीनता, साहित्य, प्रतियोगिता भारतीय चित्रकला को विभिन्न काल खण्डो में विभाजित किया गया है। प्रागैतिहासिक काल, प्राचीन काल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल, मध्यकाल के बाद की कला और आधुनिक कला।

कला की आत्मा रस है, रसो ब्रह्म का पर्याय है रसों वैस रस सृष्टि भारतीय कलाकार का प्रमुख उद्देश्य रहा है, भारतीय चित्रकला का यही उपनिषद है समरसता एवं समानता जिसको पोषक कला रूपगत शैली और पर्ययगत विविधता और विविधताओं भेद के अनेक आयाम से संचारित होते हुए भी इस अद्वैत आनंद एवं रस की प्रतिष्ठा है।

संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है, प्रकृति से मनुष्य को मिला व्यवहार नहीं देश और काल के दौर में भारतीय संस्कृति की कला का स्वरूप मानवीय प्रश्नों के द्वारा नित्य निखरता रहता है । भारतीय कला संस्कृति का इतिहास देश और काल में अत्यंत विस्तृत है, लगभग पांच सहस्त्र वर्षों की लंबी अवधि में इस संस्कृति ने विविध क्षेत्रों में अपना विकास किया है, भारतीय कला संस्कृति भूत, भविष्य और वर्तमान में प्रभावित होने वाली एक सहस्त्र धारा है और यही भारतीय चित्रकला का इतिहास अपने आप में अनोखा और दिलचस्प है।

संदर्भ

1. डा आर ए अग्रवाल: कला विलास,१९७९
2. डी. एच. गार्डनर: भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि, बिहार, १९७०
3. जगदीश गुप्त:भारतीय कला के पदचिन्ह दिल्ली, १९६१, प्राकृतिक भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद
4. निहार रंजन राय: भारतीय कला का अध्ययन, मैकमिलन, दिल्ली
5. भगवत शरण उपाध्याय: भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, दिल्ली १९६५
6. रामनाथ :मध्यकालीन भारतीय कलाएं एवं उनका विकास, जयपुर १९७३
7. राय आनंद कृष्ण:अजंता के चित्रकूट, दिल्ली१९५९
8. Agrawal R.A -Marwar murals, New Delhi, 1977 History, Art and Architecture of Jaisalmer, New Delhi; c1979.
9. Barrett, Douglas and Gray Basil -Indian painting, Geneva; c1963.
10. Ghosh. A -Ajanta meurals, New Delhi; c1966.
11. Kala, Satish Chandra -Indian Miniatures in Allahabad Museum, Allahabad; c1961.

12. Nawab, Sara Bhai, Manilal -The oldest Rajasthani Paintings from Jain Bhandars, Ahmedabad
13. Rawson P - Indian Painting, London; c1962.
14. Saxena, Jogender -Art of Rajasthan, Delhi; c1979.
15. Sivaramamurthy, C-South Indian paintings, New Delhi; c1968.
16. Indian Painting, New Delhi; c1970.
17. The art of India, New York; c1977.